भगत कबीर – सबद १५

उपजै निपजै निपजि समाई ॥

रागु गउड़ी, भगत कबीर, गुरु ग्रंथ साहिब, ३२५

उपजै निपजै निपजि समाई ॥
नैनह देखत इहु जगु जाई ॥१॥
लाज न मरहु कहहु घरु मेरा ॥
अंत की बार नही कछु तेरा ॥१॥ रहाउ ॥
अनिक जतन करि काइआ पाली ॥
मरती बार अगनि संगि जाली ॥२॥
चोआ चंदनु मरदन अंगा ॥
सो तनु जलै काठ कै संगा ॥३॥
कहु कबीर सुनहु रे गुनीआ ॥
बिनसैगो रूपु देखै सभ दुनीआ ॥४॥११॥

सार: मालिकाना हक़ एक भ्रम है जो हमें आसक्ति और बंधनों में बाँध देता है। हालाँकि संसार ठोस और स्थायी प्रतीत होता है लेकिन सब कुछ निरंतर बदल रहा है, जैसे-जैसे हम इसे देखते हैं यह विलीन होता जा रहा है। हम अपनी संपत्ति, शरीर और पहचान पर गर्व करते हैं फिर भी जिसे हम "मेरा" कहते हैं वह अनिवार्य रूप से अंततः धूल में मिल जाता है। खुली हथेलियों से रेत को पकड़ने का प्रयास करना यह जानते हुए भी कि यह टिकने वाली नहीं है, हम उसे अपने होने का आधार मानकर कसकर पकड़े रहते हैं। इस क्षणभंगुर प्रकृति को पहचानते हुए भी हम इन रूपों से ऐसे चिपके रहते हैं मानो ये हमें परिभाषित करते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति इस धोखे को समझ जाते हैं और भय और उदासीनता से नहीं बल्कि समझ और प्रेम से अलग होना सीखते हैं। वह समझते हैं कि किसी भी बाहरी चीज़ पर वास्तव में कब्ज़ा नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका स्वभाव ही मिटना है। यह सरल लेकिन गहन संदेश हमें मुक्त होने और उस अपरिवर्तनीय स्थिरता और अविनाशी शांति की ओर लौटने का आग्रह करता है जिसे कभी खोया नहीं जा सकता।

उपजै निपजै निपजि समाई ॥

सृष्टि की हर रचना जन्म लेती है, विकसित होती है और अन्ततः उसी मूल में लुप्त हो जाती है। यह विचार हमें अस्तित्व की क्षणभंगुरता और चक्राकार स्वभाव की याद दिलाता है।

नैनह देखत इहु जगु जाई ॥१॥

आँखों के सामने यह स्थिर प्रतीत होने वाला संसार निरंतर बदलता और मिटता रहता है। यह दर्शाता है कि परिवर्तन अनिवार्य और निरंतर दोनों है। (१)

लाज न मरहु कहहु घरु मेरा ॥

यह दावा करते हुए कि यह घर मेरा है, तुम्हें भीषण लज्जा नहीं आती? यह प्रश्न है, अहंकार के मालिकाना हक़ (स्वामित्व) के भ्रम और 'मैं'-'मेरा' की पहचान से बंध कर रहने पर।

अंत की बार नही कछु तेरा ॥१॥ रहाउ ॥

अंतिम क्षण में कुछ भी तुम्हारा नहीं रहता। यह जीवन की नश्वरता की वास्तविकता को प्रकट करता है कि मृत्यु में कोई किसी भी वस्तु से बंधन नहीं रख सकता। (१)(विराम)

अनिक जतन करि काइआ पाली ॥

मनुष्य अनेक प्रयासों और जतन से अपने शरीर की रक्षा और पोषण करता है।

मरती बार अगनि संगि जाली ॥२॥

लेकिन मृत्यु के समय यही शरीर अग्नि में जल कर भस्म हो जाता है। (२)

चोआ चंदनु मरदन अंगा ॥

शरीर पर इत्र और चंदन का लेप लगाया जाता है। यह न केवल विलास का प्रतीक है बल्कि जीवन और मृत्यु दोनों में शुद्धि के कर्मकांडों का भी प्रतीक है।

सो तनु जलै काठ कै संगा ॥३॥
लेकिन वही शरीर लकड़ी के साथ जल जाता है। यह हमारी पहचान की कमज़ोरी और मायावी छल की याद दिलाता है। (३)

कहु कबीर सुनहु रे गुनीआ ॥
कबीर कहते हैं, हे ज्ञानी और सज्जन गुणवानों, सुनो।

बिनसैगो रूपु देखै सभ दुनीआ ॥४॥११॥
शरीर नष्ट हो जाता है और सारा संसार इसे घटित होते हुए देखता है। यह सत्य विकसित करता है कि सब कुछ बुढ़ापे और मृत्यु के अधीन है। इसे देखने के बावजूद बहुत कम लोग इससे सीखते हैं। (४)(११)

तत्त्व: भगत कबीर अपना शाश्वत ज्ञान उन लोगों के साथ साझा करते हैं जो सत्य को सचमुच ग्रहण करने के लिए तैयार हैं। वह कहते हैं कि मानव शरीर का पोषण, श्रृंगार और सुरक्षा अत्यंत सावधानी से किया जाता है। सुगंधित तेल, इत्र, चंदन का लेप और उत्तम वस्त्र जैसे अनेक प्रकार के श्रृंगार शरीर को उन्नत बनाने के लिए और कई परंपराओं में, इसे शुद्ध और सम्मानित करने के कर्मकांडों के रूप में उपयोग किए जाते हैं। वह हमें याद दिलाते हैं कि यही शरीर, चाहे कितनी भी कोमलता से संजोया और संरक्षित किया गया हो, मृत्यु के समय राख हो जाता है। हम अपना जीवन अपनी पहचान, नाम, भूमिकाएँ और उपलब्धियाँ गढ़ने में बिता देते हैं लेकिन यह सभी रचनाएँ, हमारे शरीर के साथ अंततः विलीन हो जाती हैं। हम सभी वृद्धावस्था और मृत्यु को देखते हैं लेकिन जीवन की नश्वरता के गहन सत्य को बहुत कम लोग समझ पाते हैं।

सबद व्याख्या **विनइंदर कौर** और **अमरदीप सिंह**
Oneness In Diversity Research Foundation
वेबसाइट: OnenessInDiversity.com

ईमेल: onenessindiversityfoundation@gmail.com